गुरुकुल-शोध-भारती सितम्बर 2013 अंक 20 (पृ0224-228) ISSN 0974 – 8830

स्वामी श्रद्धानन्द और गुरुकुल को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ

निशान्त कुमार[१]

जीवन के निर्विघ्न निर्वाह के लिये तीन देवियों की महती आवश्यकता होती है, इनमें से प्रथम सरस्वती, द्वितीय लक्ष्मी और तृतीय देवी शक्ति है। ये तीनों देवियाँ मानव को सब प्रकार का सुख देने में सक्षम हैं।[२]

प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी कारण से पशु द्विज कहलाने योग्य होता है। कहने का आशय यह है कि जब कोई जन्म लेता है, उस समय वह पशु की श्रेणी में होता है और वह शिक्षा के द्वारा ही अपने (पारमार्थिक कल्याण) तथा समाज के लिये उपयोगी बन पाता है।

जहाँ तक शिक्षापद्धतियों का प्रश्न है, आज भी शिक्षाविद् इस तथ्य से सहमत हैं कि प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का कोई विकल्प नहीं है। आधुनिक युग के पुरोधा महर्षि दयानन्द ने इसी पद्धति को आधार बनाकर नये उदीयमान भारत की परिकल्पना की थी।

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा पद्धति के जिस रूप की कल्पना की थी, उसके प्रयोगात्मक रूप को अस्तित्व में आने में कुछ समय लगा। प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जा रहा है कि वे कौनसे कारण थे, जिनके कारण लाला मुंशीराम महर्षि प्रतिपादित शिक्षापद्धति को अपनाने को विवश हुए।

श्री मुंशीराम के मन में यह दृढ़ इच्छा थी कि उनकी धर्मपत्नी भी सुशिक्षित हो, उन्होंने इसके लिये प्रयास भी किया। सौभाग्य से उनको जानकारी मिली कि जालन्धर में एक वृद्धा ईसाई स्त्री हिन्दी सिखाया करती है। इस वृद्धा स्त्री से लाला मुंशीराम जी की धर्मपत्नी श्रीमती शिवदेवी ने हिन्दी पढ़ना सीखा था। बाद में वह स्त्री एक क्रिश्चियन स्कूल में नौकरी करने लगी, और पुराने परिचित लोगों के घर जाकर बच्चों का उस स्कूल में प्रवेश कराती थी। लाला मुंशीराम जी की ज्येष्ठ पुत्री वेदकुमारी को भी वह उस स्कूल में ले गयी। यह घटना१६अक्तूबर१८८८की है और स्वयं श्री मुंशीराम ने इस घटना का उल्लेख अपनी पंजिका में किया है। वह लिखते हैं–'कचहरी से लौटकर जब अन्दर गया, तो वेदकुमारी दौड़ी आयी और जो भजन पाठशाला से सीखकर आयी थी, सुनाने लगी–**'इक बार ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल? ईसा मेरा राम रसिया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।'** इत्यादि। मैं बहुत चौकन्ना हुआ। तब पूछने पर पता चला कि आर्यजाति की पुत्रियों को अपने शास्त्रों की निन्दा करनी भी सिखायी जाती है, निश्चय किया

---

१. असिस्टेंट प्रोफेसर कम्प्यूटर साइंस, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.

२. ऋ०१.१३.९ इडा सरस्वती मही तिस्रो देवी मयोभुव:। बर्हि: सीदन्त्वस्रिध:।

कि अपनी (आर्यों की) पुत्री-पाठशाला अवश्य खोलनी चाहिये।'[३] इस घटना के तीसरे दिन रविवार को आर्यसमाज का अधिवेशन था, वहाँ रायबहादुर बख्शी से स्त्रीशिक्षा के विषय में बातचीत हुई। उनको भी कन्याशिक्षा के विषय में समस्या आ रही थी, उनकी सहानुभूति मिलने पर उसी रात श्री मुंशीराम ने कन्या-पाठशाला के लिये अपील लिखकर चन्दा भी इकट्ठा करना शुरु कर दिया। परन्तु बीच में 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र निकालने का विचार मन में आगया, इसमें पाठशाला का काम शिथिल हो गया, फिर भी यह कार्य सर्वथा विस्मृत नहीं हुआ। पत्र के प्रकाशन के साथ-साथ पाठशाला के लिये भी वह चन्दा इकट्ठा करते रहे। डी.ए.वी. को लड़कों की शिक्षा का समाधान समझकर सद्धर्म-प्रचारक पत्र के माध्यम से वे कन्या-पाठशाला के लिये जन-जागरण करते रहे। श्री मुंशीराम अपनी धुन के बड़े पक्के थे, उन्होंने जो एक संकल्प एक बार ले लिया, जब तक वह पूरा नहीं होता था, वह शान्त नहीं बैठते थे। फिर यह संकल्प तो मानसिक विचार श्रेणी से बहुत आगे बढ़ चुका था। सम्वत्१९४७में वह पाठशाला खुल गई, जो आज 'कन्याa के नाम से भारत की सर्वप्रधान शिक्षा संस्थाओं में से एक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में भारतीय शिक्षा के प्रति जो रुझान देखने को मिलता है, उसका कारण मैकाले और इसाई मिशनरी द्वारा दी जा रही शिक्षा का उद्देश्य छद्म ढंग से ईसाईयत को बढ़ावा देना रहा है। यदि कदाचित् उस युग में अंग्रेजी राज द्वारा उपलब्ध करायी जा रही शिक्षापद्धति दूषित न होती तो उस युग में गुरुकुल जैसी संस्थाओं के अस्तित्व में न जाने कितना समय और लगता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द के आगमन से इस देश में जो जागृति पैदा हुई थी, उसके कारण पाश्चात्त्य शिक्षा लोगों के मन और मस्तिष्क में कहीं न कहीं कुण्ठा पैदा कर रही थी और वे विवश होकर किसी अन्य विकल्प की तलाश में थे और उनको यह विकल्प महर्षि दयानन्द द्वारा दिखाये रास्ते में दिखायी दिया।

जब एडवोकेट मुंशीराम को यह लगा कि भारत का उद्धार अंग्रेजों द्वारा दी जा रही शिक्षा व्यवस्था से नहीं हो सकता तो उन्होंने पुरातन आर्ष पद्धति को पुनर्जीवित करने का निर्णय किया। इसके लिये उन्होंने आवाज उठायी तो रास्ते पर चलने का दायित्व भी उनके कन्धों पर आगया। पं०सत्यदेव विद्यालंकार इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-'गुरुकुल की स्थापना का प्रस्ताव आपने ही आर्य जनता के सम्मुख उपस्थित किया था। उस प्रस्ताव को मूर्त रूप देने के लिये आपको ही गाँव-गाँव घूमकर गले में भिक्षा की झोली डालकर चालीस हजार रुपये जमा करना पड़ा। उसके आचार्य और मुख्याधिष्ठाता होकर उसको पालने-पोसने और आदर्श शिक्षणालय बनाने का सब काम भी आपको ही करना पड़ा। हृदय के दो टुकड़े दोनों पुत्र शुरु में ही गुरुकुल के अर्पण कर दिये थे। पलती-पूलती हुई वकालत का हरा पौधा भी गुरुकुल के पीछे मुरझा गया था। पहले ही वर्ष सम्वत्१९५९में आपने अपना सब पुस्तकालय गुरुकुल को भेंट किया। सम्वत्१९६४में लाहौर आर्यसमाज के तीसवें उत्सव पर 'सद्धर्म-प्रचारक' प्रेस भी, जिसकी कीमत आठ हजार से कम नहीं थी, गुरुकुल के चरणों में चढ़ा दिया। तीस हजार से अधिक लगाकर खड़ी की गई जालन्धर की केवल एक कोठी बाकी थी, उसको भी

---

३. पं०सत्यदेव विद्यालंकार, स्वामी श्रद्धानन्द पृ०१५६

सम्वत्१९६८में गुरुकुल के दसवें वार्षिकोत्सव पर गुरुकुल पर न्यौछावर कर दिया। सभा ने उसको बीस हजार में बेचकर वह रकम गुरुकुल के स्थिर कोष में जमा की। यह सब उस हालात में किया गया था जब कि सिर पर हजारों रुपये का ऋण था और गुरुकुल से निर्वाहार्थ भी आप कुछ नहीं लेते थे।'[४]

कोठी को दान करते हुए सभा के प्रधान को लिखे पत्र में आपने लिखा था-'मुझे इस समय३६००रुपये का ऋण देना है, वह मैं अपने लेख आदि की आय से चुका दूँगा। इस मकान से उस ऋण का कोई सम्बन्ध नहीं है।'[५] उपर्युक्त विवरण यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि इस गुरुकुल की स्थापना के मूल में जो भी कारण रहे हों, परन्तु उसकी स्थापना में जो पवित्र भावना से ओतप्रोत होकर जो बलिदान दिया जा रहा था, वह इतना उदात्त था कि उसको शब्दों की सीमा में बाँधना शायद सम्भव नहीं है। यह पवित्र उद्देश्य के लिये किया गया अपने ढंग का सर्वोच्च बलिदान था। अपने प्राणों का न्यौछावर करना कहीं अधिक सरल है, लेकिन जो सम्पत्ति बच्चों के भविष्य के लिये हो, उसका त्याग करना कितना कठिन हो सकता है, यह एक पिता ही जान सकता है।

अपने पिता की स्मृतियों में गोते लगाते हुए पं०इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं-'पिताजी प्राय: लाहौर जाते रहते थे। अधिकतर आर्यसमाज के काम से और कभी-कभी मुकदमों के प्रसंग में लाहौर जाते थे तो दूसरे या तीसरे दिन वापिस आ जाते थे। वापिस आने की सूचना जाते हुए दे जाते थे। ठीक समय पर घोड़ागाड़ी स्टेशन पर पहुँच जाती थी।- - - - - - -एक दिन हम लोग बहुत आश्चर्यचकित हो गए, क्योंकि पिताजी का सामान गाड़ी से उतारकर घर नहीं लाया गया। कोचवान ने अन्दर आकर कहा कि 'बाबू जी ने अपना सामान समाज-मन्दिर में ही उतरवा लिया है और कहा कि घर पर जाकर खबर कर दो।' बाबूजी घर पर नहीं आये और समाज मन्दिर में उतर गये हैं, इस समाचार ने घर भर में तहलका सा मचा दिया। तायी जी पहले तो स्तब्ध सी रह गयीं, फिर पिता जी के इस कार्य के अनौचित्य पर काफी जोरदार टिप्पणी करने लगीं। हम चारों बच्चे घबराकर तायीजी के चारों ओर इकट्ठे हो गये, नौकर जिसका नाम रणुआ था, एक ओर खड़ा आँखों से आँसू बहा रहा था। हमारे ताया जी, जो परिवार के मौनधारी सदस्य थे, कुछ समय पीछे हाथ में हुक्का लिये हुए ड्योढ़ी से घर के अन्दर आये और तायीजी को दिलासा देने लगे। जहाँ तक मुझे याद है, उनके दिये दिलासे का सारांश है था कि 'मुंशीराम हमेशा से ऐसा ही रहा है। जो दिल में आता है, वही करता है, तुम चिन्ता न करो, अपने-आप घर आ जायेगा।' परन्तु तायीजी घर के मामले में ऐसे वैराग्य से सन्तुष्ट होने वाली नहीं थी। उन्हें संदेह हुआ कि पिताजी किसी बात से नाराज होकर घर में नहीं आ रहे हैं। कुछ समय पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि समाज-मन्दिर में जाकर नाराजगी का कारण पूछा जाये।- - - तायी जी ने नौकर को आर्यसमाज मन्दिर में यह पूछने के लिये भेजा कि हम लोग मिलने के लिये आना चाहते हैं, कोई रुकावट तो नहीं है।- - - वह उत्तर लाया कि में कोई रुकावट नहीं है।'[६] इसके बाद सभी लोग मिलने के लिये पिता जी के पास

---

४. पं०सत्यदेव विद्यालंकार, स्वामी श्रद्धानन्द पृ०२०९

५. पं०सत्यदेव विद्यालंकार, स्वामी श्रद्धानन्द पृ०२०९

६. इन्द्र विद्यावाचस्पति, मेरे पिता स्वामी श्रद्धानन्द पृ०३८

आर्यसमाज मन्दिर गये। पिता जी मन्दिर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने द्वार पर प्रवेश करते ही कहा–'**भाभी मैंने लाहौर में प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक गुरुकुल बनाने के लिये३०हजार रुपया इकट्ठा न कर लूँगा, तब तक घर पर पैर न रक्खूँगा। इसी कारण समाज में ठहरा हूँ, घबराने की कोई बात नहीं है।**'[७]

इस प्रकार जब प्रथम बार आधुनिक भारत में गुरुकुल की स्थापना का वातावरण बनाने में लाला मुंशीराम ने न केवल दयानन्द द्वारा दिये गये बीज को बोया ही, अपितु उसको पल्लवित करने का दायित्व भी उन्हीं के कन्धों पर आगया। यदि एडवोकेट मुंशीराम अपनी धुन के पक्के न रहे होते तो शायद महर्षि के स्वप्न को साकार होने में पता नहीं कितना और समय लगता। आज भी हम उस युग के परिदृश्य पर विचार करते हैं तो यह एक असंभव कार्य प्रतीत होता है।

एक स्थान पर स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा है कि वे शुरु में डी.ए.वी. कॉलेजों को ही लड़कों के लिये गुरुकुल समझते थे।[८] और मानते थे कि इससे महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार किया जा सकता है। इसलिये प्रारम्भ में लड़कियों के लिये ही शिक्षा व्यवस्था करने की चिन्ता थी। इससे यह बात विदित होती है कि उस युग में डी.ए.वी. के प्रति लोगों की कैसी धारणा थी, लेकिन आर्यजनता के साथ-साथ एडवोकेट मुंशीराम भी कालेज की शिक्षा व्यवस्था से निराश हुए। यद्यपि डी.ए.वी. संस्थानों ने भारत को स्वतन्त्र कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। निराश हेने का कारण यह था कि इनमें ब्रह्मचर्याश्रम की पद्धति का अभाव था। आश्रमपद्धति की स्थापना के लिये 'प्रचारक' स्वामी श्रद्धानन्द लिखते हैं–'सरकारी कालेजों पर तो हमारा अधिकार नहीं, किन्तु अपने कालेज पर इतना अधिकार हो सकता है कि उसके लिये शहर से दूर जगह ली जाय और कालेज के स्थिर-भवन शहर में न बनाकर दूर बनाया जाये।' प्रचारक नामक पत्र में आप प्राय: लिखा करते थे कि 'आश्रमव्यवस्थ के विना वर्णव्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आश्रमों पर ही वर्ण निर्भर हैं। जब गुरुकुल नहीं हैं, तब आश्रम-पद्धति का उद्धार कैसे हो?' गुरुकुल के सम्बन्ध में इस प्रकार की चर्चा तो प्रचारक पत्र में प्राय: शुरु के अंकों से पढ़ने को मिलती है किन्तु उसके लिये स्पष्ट प्रस्ताव८आषाढ सम्वत्१९५३के अंक में किया हुआ मिलता है। उस अंक से 'सन्तान को आर्य क्यों कर बना सकते हो?' के शीर्षक से एक लेखमाला शुरु की गयी थी। शहर के वातावरण के बुरे प्रभाव से पैदा होने वाली बुराइयों का उल्लेख करने के बाद आपने एक स्पष्ट योजना गुरुकुल के सम्बन्ध में पेश की थी। उसका आशय यह था कि२०आर्य पुरुष ऐसे चाहिये जो अपनी सन्तान के लिये१५रुपये मासिक खर्च कर सकें। अमृतसर के पास नदी के किनारे ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य है, जहाँ परीक्षण के लिये गुरुकुल खोला जाये। अपने दो बालकों को उसमें भेजने का निश्चय प्रकट करके अठारह और ऐसे आर्य पुरुषों के लिये अपील करते हुए लेखमाला को समाप्त किया।[९]

उपर्युक्त विवरण से यह पता चलता है कि गुरुकुल खोले जाने में जो प्रमुख कारण रहे हैं, उनमें

---

७. इन्द्र विद्यावाचस्पति, मेरे पिता स्वामी श्रद्धानन्द पृ०३९

८. पं०सत्यदेव विद्यालंकार, स्वामी श्रद्धानन्द पृ०१९७

९. पं०सत्यदेव विद्यालंकार, स्वामी श्रद्धानन्द पृ०१९७-९८

से सर्वप्रथम अंग्रेजी शिक्षा पद्धति रही है, उससे निराश होकर आर्यजनता ने डी.ए.वी. संस्थान खोले और जब इनसे भी अपेक्षित परिणाम हाथ नहीं लगा और महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था की स्थापना होती दिखायी नहीं दी तो फिर आर्यजनता का गुरुकुल की ओर मुँह मोड़ने के लिये स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल शिक्षा के लाभ तथा अंग्रेजी शिक्षा से होने वाली हानि गिनाते हुए गुरुकुल स्थापना के लिये वातावरण बनाया। अन्त में उसकी स्थापना का श्रेय भी आपको ही है। इस प्रकार एडवोकेट मुंशीराम गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था के अग्रदूत, संवाहक और पथप्रदर्शक से लेकर स्वप्न को साकार करने वाले युगनिर्माता भी रहे।